आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास और प्राकृत तथा अपभ्रंश

डॉ० देवेन्द्र कुमार जैन

प्राकृत, संस्कृत के समानान्तर एक व्यापक भाषा थी, जो एक ओर भारतीय आर्यभाषा की मध्यकालीन अवस्था का प्रतिनिधित्व करती है और दूसरी ओर उसके लोक तत्त्वों को सुरक्षित रखती है। संस्कृत और प्राकृत में कौन प्राचीन है, यह एक विवादभरा प्रश्न है। जिसका उत्तर ढूढ़ने के लिए पूर्व भारतीय आर्यभाषा के विकास की विभिन्न भूमिकाओं का अध्ययन करना होगा। हमारी कठिनाई यह है कि इन भूमिकाओं के लिखित आलेख उपलब्ध नहीं हैं।

प्राकृत की प्राचीनता इस तथ्य से सिद्ध है कि उसमें और ऋग्वेद की भाषा में कुछ ऐसे समान भाषिक तत्त्व मिलते हैं जो संस्कृत में नहीं हैं। प्राकृतों की चर्चा के संदर्भ में आचार्य हेमचन्द्र ने 'अनादि प्राकृत' का उल्लेख किया है, इससे उनका अभिप्राय उस 'प्राकृत' भाषा से है जो ऋग्वेद की भाषा और संस्कृत की पूर्ववर्ती भाषा थी, जिसे हम आदि भारतीय आर्यभाषा कह सकते हैं ? लेकिन आज जो प्राकृत-साहित्य उपलब्ध है वह संस्कृत के उत्तरकाल का है ? संस्कृत और प्राकृत, उसी पूर्ववर्ती आर्यभाषा रूपी सिक्के के दो पहलू हैं। जब उसे निश्चित नियमों में ढाला जाता है तो वह संस्कृत है और जब वह सहज वचन व्यापार के रूप में प्रयोग में लाई जाती है तो प्राकृत है। अपभ्रंश, इस सहज वचन व्यापार का परवर्ती बढ़ाव है, जो मध्यकालीन और आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के विकास की महत्त्वपूर्ण कड़ी है।

संस्कृत आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के उद्‌गम और विकास के लिए 'भाषोत्री' का कार्य करती है इसमें सन्देह नहीं, परन्तु यह नहीं भुलाया जाना चाहिए कि वह लोक प्रयोग के मैदानी इलाकों में प्रवेश कर परिवर्तन की जिस प्रक्रिया से गुजरती है, उसके तत्त्व प्राकृत और अपभ्रंश में सुरक्षित हैं ? उनके अध्ययन के बिना भारतीय आर्यभाषा के बिकास को नहीं समझा जा सकता। प्राकृतों की रचना प्रक्रिया का अध्ययन करते समय यह देखना ज्यादा वैज्ञानिक है कि उनमें क्या समानताएँ हैं, तथा जो भिन्नताएँ हैं उनके मूलभूत समान स्रोत क्या हैं ? इस प्रकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समानताओं और असमानताओं के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा भाषा विकास की सही प्रक्रिया का पता लगाया जा सकता है। किसी भी वर्तमान भारतीय आर्यभाषा रूपी गंगा का वैज्ञानिक अध्ययन तभी सम्भव है जब उसकी उल्टी चढ़ाई की जाए ? इससे न केवल विकास की सही प्रक्रिया स्पष्ट होगी, बल्कि भाषिक प्रयोगों की एकरूपता को हम प्रमाणिक आधार दे सकेंगे। अनेक भाषा-वैज्ञानिक अध्ययनों के होते हुए भी यदि भारत के भाषिक विकास की खोई हुई कड़ियों को अभी तक नहीं जोड़ा जा सका तो इसका एक मात्र कारण यह है कि जहाँ संस्कृत और प्राकृत के विद्वान् आधुनिक भाषाओं की रचना प्रक्रिया से परिचित नहीं है, वहीं आधुनिक भाषाओं के विकास का अध्ययन करने वाले संस्कृत प्राकृत की भाषिक प्रवृत्तियों से परिचित नहीं हैं। आगे कुछ शब्दों की व्युत्पत्तियाँ दी जा रही हैं जो हिन्दी और उसकी बोलियों में ही प्रयुक्त नहीं हैं, बल्कि दूसरी-दूसरी प्रादेशिक भाषाओं में ज्यों के त्यों या थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ प्रयुक्त हैं। कुछ शब्द मध्यकालीन काव्य भाषाओं, ब्रज, अवधी में प्रयुक्त थे, परन्तु हिन्दी में उनका प्रयोग अब नहीं होता।

१ जुहार—कुछ व्युत्पत्ति शास्त्री इसे देशज मानते हैं, कुछ ने संस्कृत जुहराण से इसका विकास माना है। जुहार का मूल संस्कृत 'जयकार' है। स्वयंभू के 'पउमचरिउ' में इसका पूर्ववर्ती रूप सुरक्षित है—'सिरे करयल करेवि जोक्कारिउ' सिर पर करतल कर जयकार किया। जयकार>ज अ कार>ज उ कार>जोक्कार>जोकार>जो आ र>जोहार>जुहार। पंजाबी में 'जुकार' प्रयुक्त है।

२. जौहर—हिन्दी शब्द सागर ने इसकी व्युत्पत्ति जीवहर से मानी है। जौहर मध्ययुग में राजपूत रमणियों के सामूहिक आत्मदाह की प्रथा थी। सती प्रथा और जौहर में अंतर है। जौहर की व्युत्पत्ति है—जतुगृह (लाक्षागृह) ज उहर>जोहर>जौहर 'जतुगृह' ज्वलनशील रासायनिक घर को कहते हैं जिनका वर्णन महाभारत में है। स्वयंभू के 'रिट्ठणेमिचरिउ' में इसका वर्णन इस प्रकार है—

'सण-सज्ज रस वासा-धिय संगहु
लक्खाकय वणकट्ठ-परिग्गहु
बरिस वारि हुयवहु-भायणु" १०।१८

जौहर करना—मुहावरा है, जिसका लाक्षणिक अर्थ है— जतुगृह में प्रवेश कर सामूहिक आत्मदाह कर लेना।

३. दूल्हा—दुर्लभ>दुल्लह>दूल्हा। मध्ययुग में, और अब भी 'वर' दुर्लभ माना गया है। भारत की पितृसत्ताक समाज रचना में ऐसा होना स्वाभाविक है। एक अपभ्रंश दोहे का अवतरण है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'ढोल्ला सांवल धण चंपअ वण्णी
णाइ सुवण्णरेह कसवइट्ट दिण्णी'

प्रिय श्याम है, और (उसकी गोद में बैठी हुई) धन्या (प्रिया) चंपे के रंग की है, मानो कसौटी पर दी गई स्वर्णरेखा हो।

३. दामाद—इसके मूल में जामाता है, उससे दो रूप बनते हैं—

(१) जामाता > जाआंई > जवांई [जमाई]

दूसरी विकास प्रक्रिया है—जमाता > जामादा > दामादा > दामाद। 'ज' का 'द' से विनिमय पाणिनि के समय में ही होने लगा था। जाया और पति के द्वन्द्व समास में जंपति और दंपति दोनों रूप बनते हैं। यह प्रवृत्ति मध्ययुग के कवियों की रचनाओं में सुरक्षित है जैसे कागज का कागद प्रयोग। दामाद फारसी का शब्द नहीं है। कुछ विद्वान् 'दामन्' से दामाद का विकास मानते हैं, जो शाब्दिक खींच-तान है।

५. बरात - वरयात्रा > वरआत्त > बरात्त > बरात। बरात का 'महत्त्व' भारतीय समाज में है। उसे फारसी शब्द मानना ठीक नहीं। बरात का मूल भारतीय आर्य भाषा का शब्द वरयात्रा है। फारसी वारात से इसका सम्बन्ध नहीं।

६. सहिदानी—यह शब्द अब हिंदी में प्रयुक्त नहीं है। तुलसीदास के मानस में इसका प्रयोग है।

'यह मुद्रिका मातु मैं आनी
दीन्हि राम तुम्ह कह सहिदानी' ५।५।१३

टीकाओं और शब्दकोशों में 'सहिदानी' का अर्थ निशानी या पहचान मिलता है, जब कि यह मुद्रिका का विशेषण है। व्युत्पत्ति है—साभिजानिका > साहिजानिका साहिजानिआ > सहिजानी > सहिदानी। ऊपर कहा जा चुका है कि 'ज' का विनिमय 'द' से होता है। सहिजानी और सहिदानी दोनों रूप संभव हैं, अर्थ होगा—पहिचान वाली, न कि पहिचान। प्राकृत अपभ्रंश स्तर पर अभिज्ञान के दो रूप संभव हैं अहिजाण और अहिण्णाण।

७. जनेत—मूल शब्द है यज्ञयात्रा। भारतीय-संस्कृति में विवाह एक यज्ञ है, अतः यज्ञयात्रा > जण्ण आत्ता > जण्णत्त > जन्नेत्त जनेत। जण्ण आत्ता से पूर्व असावर्ण्य-भाव के नियम से जण्णे आत्त > जण्णेत्त > जनेत रूप भी संभव है। मानस में उल्लेख है 'पहुँची आई जनेत'। स्वयंभू ने इसी अर्थ में 'जण्णत्त' का प्रयोग किया है। 'पा स म' में यज्ञयात्रा का जण्णत्त रूप मिलता है। कुछ विद्वानों ने संस्कृत जन से जनेत का विकास माना है, जो गलत है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. **नैहर**—मूल शब्द ज्ञातिगृह से णाइ हर>नौहर>नैहर के रूप में विकसित हुआ। इसी तरह मातृगृह से मैहर का विकास हुआ। मातृ गृह> माइ हर> मैहर।

९. **पानबीड़ा**—संभवतः इसे देशी मान लिया गया है। पर यह पर्ण + वीटक से विकसित शब्द है पर्णवीटक>पण्ण वीउअ>पान बीड़ा। पुष्पदंत ने 'पण्ण वीउअ' का प्रयोग किया है। एक पिता अपनी रूठी हुई कन्या को समझाता हुआ कहता है:— 'पुत्ति पण्णवीडि दंतग्गहिं खंडहि' हे पुत्री तुम पान के बीड़े को दांतों से काटो।

१०. **ननसार**—मूल शब्द है ज्ञातिशाला। उससे ननिहाल और ननसार शब्द बनते हैं। 'नन' दोनों में समान रूप से है जो ज्ञाति से ण्णाइ>नानि>ननि> नन के रूप में विकसित हुआ। शाला के दो रूप संभव हैं सार और हाल। इस प्रकार ननसार ननिहाल रूप बनते हैं।

११. **नवेला-अलबेला**—मूल शब्द नवतर से नवअर>नवइर>नवर> नवेल>नवेला विकसित है। नवेला के पूर्व में 'अ' के आगम के कारण अनबेला बनता है। फिर न का ल से विनिमय के कारण अलबेला रूप बनता है। यह उसी प्रक्रिया से बनता है जिससे नोखा (नवक) से अनोखा बनता है।

१२ **लाहोर**—मूल शब्द है शलातुर। पाणिनि इसी गाँव के शलातुरीय थे, शलातुर>हलाउर>लाहउर>लाहोर। हलाउर से लाइउर वर्णव्यत्यय के कारण बना।

१३. **खरोष्ठी**—इसकी व्युत्पत्ति के विषय में भयंकर अटकलबाजी से काम लिया गया है। खर (गधे) के ओठों से इसका कोई संबंध नहीं। खरोष्ठी लिपि की शैली 'देवनागरी' की शैली से उल्टी है। जिसमें लिखने की शैली पीछे से हो, अर्थात् जिसमें बाएँ से दाएँ लिखा जाए व्युत्पत्ति होगी—अक्षर पृष्ठिका>अक्खर + उष्ठिआ अखरोष्ठिआ>खरोष्ठी। नियमानुसार होना चाहिए खरोट्ठी।

१४. **ढोर** इसकी व्युत्पत्ति शब्दकोश में नहीं है, अतः इसे देशी मान लिया गया। वास्तव में इसका मूल शब्द है 'धवल' जिसके दो अर्थ हैं—धौरा बैल और सफेद रंग। धवल>धअल>धउल>धोल = धोर>ढोर। यह बहुत व्यापक शब्द है जिसके अर्थ का विस्तार हो गया।

१५. **रैनबसेरा**—रजनी वसतिगृह = रात में ठहरने का ठिकाना। व्युत्पत्ति है—रअणी वसइहर>रेण वसइ अर>रैन बसेरा।

१६. **सवार**—भारतीय आर्यभाषा मूलक शब्द है। इसे फारसी से विकसित मानना ठीक नहीं है। अश्वारोहक से—असवा रोहउ>असवार अ उ>असवार उ>

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सवार। पुष्पदंत महापुराण में लिखते हैं—"छुडु असवार वाहिय तुरंग" शीघ्र अश्वारोहियों ने घोड़े चलाए। आगे चलकर इसके अर्थ का विस्तार हो गया। सवारी करने वाले को सवार कहा जाने लगा।

१७ लुकाठी—

"कबिरा खड़ा बजार में लिए लुकाठी हाथ"

लुकाठी का अर्थ शब्द कोशों में जलती हुई लकड़ी है। मूल शब्द ज्वलितकाष्ठिका है। संस्कृत ज्वल से दो विकास संभव हैं, जल और वल। ज्वलित काष्ठिका > वलिअकट्ठिआ > उलकट्ठिआ > लुकट्ठिआ > लुकट्ठि > लुकाठी। कबीर की तरह घर-फूंक तमाशा दिखाने में ज्वलितकाष्ठिका भी पीछे नहीं है।

१८ **भौंहरा**— भूमिगृह का विकास है। भूमिगृह > भुइंहर > भँउहर > भौंहर > भौंहरा।

१९. **भुनसार** —'भानुशाला' से विकसित भुनसार कई भाषाओं और बोलियों में प्रचलित है। भानु के दो अर्थ हैं सूर्य और प्रभा। भानुशाला यानी प्रभा का घर यानी भोर या तड़के। भानुशाला > भानु साल > भानुसार > भिनसार दूसरा रूप भुनसार। भिनसार पूर्वी हिंदी में अधिक प्रचलित है: जैसे 'बिलपत नृपहिं भयेउ भिनुसारा' (मानस २।३७) 'कहत रामगुन भा भिनुसारा' (वही) 'भा भिनसार किरन रवि फूटी (पदमावत)

'भुनसारे सोन चिरैया काय बोली' सबेरे-सबेरे सोन चिड़या क्यों बोली? बुन्देलखंडी लोकगीत।

२०. **पगड़ी**— संस्कृत प्रावृ धातु से प्रावर बनता है, जिसका अर्थ है आच्छादन। प्राकृत में इसके लिए पंगुर शब्द है जिसका विकास, प्रा + वृ से कल्पित है। पंगुर > पग्गुर > पग्गर > पग्गड़ स्त्रीलिंग में पगड़ी। पगड़ी के कई अर्थ हैं, नजराना या भेंट, पगड़ी बांधना, पगड़ी लेना, पगड़ी देना इत्यादि। पग्गुर से पग्ग > पाग रूप भी संभव हैं। सूरसागर में इसका प्रयोग है। "दधि ओदन भर दोनों देहों अरु आंचल की पाग।" एक और शब्द है 'पगहा' "आगे नाथ न पीछे पगहा"। पगहा यानी लगाम। इसका विकास संस्कृत प्रगह > पग्गह > पगहा के रूप में हुआ।
योग है 'जहिं पग्गहि धवलु परिग्गा' जहाँ बैल को रस्सी से पकड़ा गया है।

२१. **अनाड़ी** अनाड़ी के मूल में अज्ञानी शब्द है, न कि अन्यायकारी, या अनार्य, जैसा कि क्रमशः डा० उदयनारायण तिवारी और डा० देवेन्द्रनाथ शर्मा समझते हैं। अनार्य से खींचतान कर अनाड़ी सिद्ध किया जा सकता है। परन्तु उसका अर्थ होगा निंद्य, आर्येतर पापी या दुष्ट, जबकि अनाड़ी का अर्थ है विवेकहीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो अज्ञानी से अण्णाणी > अन्नाड़ी > अनाड़ी विकसित है, हिन्दी में इसी अर्थ में 'अनाड़ी' शब्द प्रयुक्त है। अनाड़ी के हाथ में पड़ी मोती की माला सी कर्पूरमंजरी कीदशा है; (भारतेंदु)। 'ठानत अनीति आनि, नीति लै अनारी (अनाड़ी) की' (रत्नाकर)।

२२. **अखाड़ा**—अक्षवाट > अक्ख आड > अक्खाड > अखाड़ा। राजभवन का वह स्थान जहाँ पर सार्वजनिक उत्सवों का आयोजन होता था।

डा० देवेन्द्रनाथ शर्मा ने संस्कृत आखात से (आखात > अखाद > अखाड़ा) जो अखाड़े की व्युत्पत्ति मानी है, वह गलत है। त और द को मूर्धन्यभाव होता है, परंतु इसमें 'र' का होना जरूरी है जैसे गर्त मे गड्ढा बनता है। अखाड़े का अभिप्राय रंगभूमि से है। जैसे—

"लंका सिखर उपर अगारा
तहं दसकन्धर देख अखारा"।
"नट नाटक पतुरिनी औ बाजा
आनि अखार सबै तहं साजा"।-पद्मावत

२३. **अहूठा**—अहूठा का संक्षिप्त रूप हूठा भी है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल इसकी व्युत्पत्ति अध्युष्ट से मानते हैं, परन्तु यह शब्द संस्कृत में इस अर्थ में नहीं है। अहूठा का अर्थ है साढ़े तीन हाथ।

हत्थ अहुट्ठह देवली बालहं नाहि पवेसु।

साढ़े तीन हाथ की देवली है, जिसमें मूर्खों का प्रवेश नहीं है।

"अठहु हाथ तन सरवर हियो कँवल तेहिं मांह"।-पद्मावत

मूल शब्द अर्द्ध + त्रि [आधा और तीन] से [अर्द्धत्रि > अड्ण ट्टि > अढट्टि > अहुट्ठ > अहुठा] विकास हुआ।

२४. **असरार**—कबीर कोश में असरार को सर सर से, और असरारा को फारसी शरीर (शैतान) से विकसित माना गया है। वस्तुत: असरार के मूल में अजस्रतर शब्द है। अजस्रतर>अअ सर अर > असरार > असराल असरार। स्वयंभू और पुष्पदंत ने इसका प्रयोग किया है। कबीर कहते हैं—

"मन्मथ करम कसै अस रारा
कलपत विंदु कसै तिहि द्वारा"

२५. **आरसी**—कहावत है हाथ कंगन को आरसी क्या ? आदर्शिका > आअरसिआ > आरसिआ, > आरसी।

२७. **अधेड़**—अर्द्धवृद्ध > अद्ध इड्ढ > अद्धेड्ढ > अधेड्ढ > अधेड़। यानी अधबूढ़ा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२७. **खड़ी खड़ा**—खड़ा खड्डा आदि शब्द पंजाबी, हरियानी और खड़ी बोली में प्रयुक्त है, जबकि हिंदी बोली समूह और राजस्थानी में क्रमशः ठाढ़ और ऊभा शब्द प्रचलित हैं। ठाढ़ के मूल में स्थान शब्द है। प्राकृत वैयाकरण स्थान से ठाण का विकास मानते हैं। प्राकृत के एक नियम के अनुसार 'ठ' 'ख' में बदलता है। खाण से खड़ा बना। 'खड़ी बोली' का अर्थ है, स्थापित या व्यवहार में आनेवाली बोली। दूसरी बोलियाँ प्रादेशिक आधार पर अपना विकास करती हैं, जब कि खड़ी बोली ऐतिहासिक आधार पर।

२८. **खड़ाऊँ** काष्ठपादुका > कट्ठ आ उ आ > कठाउआ > कढाउआ > ख डा उ आ > खड़ाऊँ।

२९. **रस्सी/लेजुरी**

संस्कृत में रश्मि और रज्जु शब्द हैं—"किरणों का रज्जु समेट लिया"। [कामायनी]

रश्मि > रस्सिर > रस्सी।

रज्जु > लज्जु > लेज्ज > लेज।

स्वार्थिक प्रत्यय 'ड' के कारण रज्जुड़ी रूप होगा। रज्जुड़ी > लजुड़ी 7 लेजुरी। लजुड़ी से जेलुड़ी > जेउड़ी > जेवड़ी का विकास होता है।

'राम नाम की जेवड़ी जित खींचे तित जाऊँ।'—कबीर

'लेजुरी भई नाह बिनु तोहीं।'—जायसी

३०. **बड़ा**—बृहत् > बहड्ड > बअड्ड > बाड्ड > बड़ा।

ये व्युत्पत्तियां बानगी के तौर पर दी गई हैं, जो यह बताने के लिए हैं कि लोकव्यवहार भाषा की वह टकसाल है, जो शब्दों को घिसती है, ढालती है, और उनका प्रमाणीकरण करती है। क्योंकि इसके बिना लोक व्यवहार नहीं चल सकता। भारतीय आर्यभाषा मूलतः एक भाषा का प्रवाह है, जो एक से अनेक प्रवाहों में विकसित होता हैं, प्राकृत अपभ्रंश उसके मुहाने हैं, जिनके अध्ययन के बिना न तो आर्यभाषा की बहुमुखी विकास-प्रक्रिया का वैज्ञानिक अध्ययन संभव है, और न उनके योगदान का वास्तविक मूल्यांकन। इसके लिए पहली मूलभूत आवश्यकता है - प्राकृत और अपभ्रंश के शब्दों और रूपों के व्युत्पत्तिमूलक शब्दकोशों की रचना, जो संदर्भों और उदाहरणों से भरपूर हो। उसके अनंतर प्रत्येक प्रादेशिक अथवा बोली के उद्गम और विकास की प्रवृत्तियों का अध्ययन और उनकी, पूर्ववर्ती शब्दों और रूपों से पहचान, इससे आर्यभाषा की क्षेत्रीय और ऐतिहासिक प्रवृत्तियों की प्रामाणिक पहचान हो सकेगी।

•

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org